श्रीमदभगवदगीता और बाईबल में जीवन-सत्य

डो. रघु पटेल
अध्यापक,
भवन्स आर्टस एन्ड कोमर्स कोलेज, डाकोर

आधुनिक युग में वैज्ञानिक और तकनीकि प्रगति के कारण मनुष्यने देशकाल पर विजय प्राप्त कर लिया है और भौतिक प्रगति की पराकाष्ठा पर पहुंचकर अमाप शक्ति प्राप्त कर ली है। तो दूसरी ओर देखे तो वह आंतरिक अभाव से ग्रस्त हो गया है। आज का समाज नैतिक मानववाद की आवश्यकता को महसूस कर रहा है। ऐसी जटिल स्थिति में श्रीमदभगवदगीता और बाईबल का नैतिक मानववाद विश्व की सभी समस्याओं का समाधान कर सकता है।

आधुनिक काल मे पाश्चात्य संस्कृति को ईसाई संस्कृति कहा जाता है। यह संस्कृति आज वैज्ञानिक एवं औद्योगिक परिवर्तनों के कारण ध्वस्त सी दिखाई दे रही है। यह संस्कृति ऐसी द्विधायुक्त स्थिति में गुजर रही है कि एक सामान्य मानव न तो विज्ञान को अस्वीकार कर सकता है और न ही पूर्णतया व्यक्तिगत ईश्वर की धारणा को स्वीकार कर सकता है। सत्य यह है कि ईसाई सस्कृति, ईसाई धर्म तथा ईसाई दर्शन निश्चित रुप से गौण हो गये है। धर्म,दर्शन और विज्ञान का मिलाप नही हो सकता।जबकि तीनों ही सत्य की खोज है। पाश्चात्यदर्शन की यह त्रुटि है।

सर्वप्रथम बाईबल द्वारा प्रतिपादित ईसाईवाद के तथाकथित संन्यासवादी दृष्टि- कोण का विश्लेषण करना जरुरी है । जिसके आधार पर धर्म के ठेकेदार व्यावहारिक सत्योंको पाप घोषित करते है। ईस महान भ्रान्तिकारक दृष्टिकोण का सूत्रपात ईसा के निम्नांकित कथन से होता हैा

> 'You cannot serve two masters: God and Money. For you will hate one and love the other or else the other way around.'
>
> -Bible Methew 6.4

ईस कथन से धार्मिक एवं भौतिक जगत के बीच एक तिराड उत्पन्न हो गइ है । यह बात भी सब जानत है कि उपासक ईश्वर और दैत्य को एकसाथ प्राप्त नही कर सकता । तो क्या ईश्वर को प्राप्त करने के लिए जगत का त्याग कर देना आवश्यक है? भगवान ईसुने अपने अनुयायियों को भौतिक सुख-समृद्धियों से दूर हो कर एकांगी संन्यासवादी दृष्टिकोण स्वीकृत करने का उपदेश दिया है । यदि भौतिक जगतरुपी दैत्य ईश्वर का विरोधी तत्व है, वही अनैतिक कर्म करवाता है, और वह ईश्वर का विरोध करता है, मनुष्य को प्रलोभन देता है, तो ईसका तात्पर्य यह होता है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान और पूर्ण नहीं है । बाईबल का यह विचार निराशावाद और संन्यासवाद का समर्थन करता है । यदि ईशु ने धृणा का अस्वीकार तथा प्रेम को मुक्ति का रास्ता बताया होता, तो उपयुक्त कथन की संन्यासवादी धारणा सर्वथा अनुपयुक्त, एकांगी एवं असंगत होती ।

ईसाईवाद संपूर्णतः संन्यासवादी नहीं है, उन संप्रदाय के पादरी संन्यासवादी हैं। ईसाई धर्म स्पष्ट कहता है कि कोई व्यक्ति दो नाव पर पैर रखकर नदी पार नहीं कर सकता। किन्तु जहाँ तक ईहलोक और परलोक का संबंध है, बाईबल दोनों को सर्वथा पृथक घोषित करता है। ईस में कोई संदेह नहीं है कि ईश्वर और दैत्य, ईहलोक और परलोक, श्रेयस और प्रेयस दो भिन्न भिन्न तत्व

है। किन्तु ईन में एक साधन और दूसरा साध्य भी हो सकता है। आध्यात्मिक अनुभूति और भौतिक जगत में से एक को साध्य और दूसरे को साधन माना जा सकता है।
यद्यपि मानव जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वरानुभूति है, तथापि भौतिक समृद्धि को प्रधान रुप में नहीं किन्तु गौण रुप में भी स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि वह सांसारिक जीवन में सुख और आनन्द के लिए आवश्यक है ।श्रीमदभगवदगीता वैदिक संस्कृति और नैतिकता से जुडे हुए धर्म की प्रेरणा देती है। यद्यपि नैतिकता में द्वत और विविधता को स्वीकार करना आवश्यक है तथापि नैतिकता का चरम लक्ष्य द्वैतवादी हो सकता नहीं । श्री मदभगवदगीता का तत्ववाद औपनिषदिक तत्ववाद हैं। संपूर्ण जगत का निर्माण एक ही परब्रह्म तत्व से हुआ है । जगत के विकास का आधार एक ही अद्वैत तत्व है, जिसे परब्रह्म के नाम से पहचानते है । जिसमें आत्मस्वरुप शाश्वत है और भौतिक तत्व मृत है । यह भौतिक जगत , जिसे बाईबल में मैमन कहा गया है श्रीमदभगवदगीता में ईसे ही दिव्य, अव्यय, अक्षर और पुरुषोत्तमरुपी अद्वैत परब्रह्म से प्ररित और समन्वित स्वीकारा
गया है । ईस दृष्टिकोण को श्रीमदभगवदगीता में भी लक्षित किया गया है। -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। १८-६६

श्रीमदभगवदगीता में पाप की व्याख्या बाईबल के सापेक्ष पाप की धारणा से सर्वथा भिन्न है। श्रीमदभगवदगीता के अनुसार मानव के लिए पुण्य-पाप, सत-असत और शुभ-अशुभ की धारणाओं से उपर उठना संभव है, किन्तु बाईबल में ऐसी कोई संभावना नहींहै । भगवदगीता में उस पाप को धारणा का स्थान नहीं है, जो मनुष्य में हीन भावना को जन्म देती है, जबकि बाईबल में यह निर्देश किया गया है, कि मनुष्य पाप मैं जन्म लेता है। भगवदगीता में आत्मा को शुभ-अशुभ के निर्वाचन की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। जिससे मानव वैसी स्थिति को प्रप्त कर लेता है, जहां सापेक्षताओं का कोई स्थान रहता नहीं है। इस लिए ही गीता में अर्जुन को पाप की धारणा से मुक्त होकर और भयरहित होकर दुर्जनों का नाश करने का आदेश दिया है ।

श्रीमदभगवदगीता की नैतिकता वर्तमान युग में अनुभूत है, वह मानव को वैज्ञानिक एवं तकनीकि उन्नति से रहित नहीं करती। वह इसके द्वारा उपलब्ध प्रेयस को परम पावन और आध्यात्मिक बना देती है। श्रीमदभगवदगीता निष्काम कर्मयोग का बोध करती है, बाईबल की तरह भौतिक जगत से धृणा का उपदेश करती नहीं है। यद्यपि बाईबल और गीता दोनों में प्रेयस और श्रेयस का समन्वय दिखाई देता है, तथापि गीता की नैतिक दृष्टि अधिक व्यापक, तर्कयुक्त एवं व्यावहारिक है ।

श्रीमदभगवदगीता का जीवन-सत्य है, अनपेक्षित कर्म । गीता में श्रीकृष्ण घोषणा करते है कि मुझे तीनों लोकों में कुछ भी करने को शेष नहीं है, फिर भी मैं कर्म करता हूं अनयथा मेरे भक्त कर्म से दूर हो जायेंगे।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।। ३-५

श्रीमदभगवदगीता निष्काम कर्म का आदेश देती है और उपदेश करती है कि- कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। २-४७ पाश्चात्य दार्शनिक कान्ट ‘ duty for duty’s sake’ अर्थात कर्तव्य के लिए कर्तव्य का सिद्धांत देते है। भगवदगीता के निष्काम कर्म का उद्देश्य है ब्रह्मतत्व कि प्राप्ति। किन्तु कान्ट-सिद्धांत का कोई निश्चित ध्येय नहीं है। कान्ट कासिद्धांत जहां आकार मात्र रह जाता है, वहीं गीता के सिद्धांत में विशिष्ट सामग्री दिखाई देती है। वहां निष्काम कर्म का ही आदेश है, कर्म से पलायन होने का नहीं। यहां सिर्फसकर्म फल की आशा से मुक्त होने को बात ही प्रधानरुप से बताई गई है। श्रीमदभगवदगीता में तीन जीवन-सत्य प्रतिपादित है-कर्म,भक्ति और ज्ञान।

गीताकार की निश्चित धारणा है कि निष्काम कर्मयोग हमें जीवन कि उच्चतम अवस्था पर ले जाता है। श्रीमदभगवदगीता के दूसरे अध्याय में लिखा है,

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम।। २-५१

अर्थात ज्ञानी पुरुष कर्मजन्य फल को त्याग कर जन्मरुपी बन्धन से मुक्त होकर निःसंदेह उच्चतम अवस्था को प्राप्त कर सकता है। निरासक्त कर्म की ऐसी स्तुति अन्यत्र दुर्लभ है। चित्त शुद्धि के लिए निष्काम कर्म करना अत्यंत आवश्यक है । सांख्य बिना योग को प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। योगयुक्त पुरुष शीघ्र ही परमतत्व को प्राप्त कर सकता है। अतः ज्ञानयोग और कर्मयोग वस्तुतः एक साथ ही है। ज्ञान, कर्म और भक्ति को समन्वित करते हुए भगवदगीता में कहा गया है –

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति ज्ञात्वा विशते तदन्तरम ।।
१८. ५४-५६

कर्मयोग वस्तुतः व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनो दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण ध्येय है। पारमार्थिक दृष्टिकोण से ब्रह्मप्राप्ति मोक्ष का साधन तो है ही, किन्तु इस जीवन के लिए अत्यंत जरुरी भी है। निष्काम कर्म जिस में लोकसंग्रहार्थ कर्म भी संगृहित है, जिस के अतिरिक्त मानवतावाद का और क्या लक्ष्य हो सकता है? मानवतावाद का नारा बुलंद करती हुई इस पथभ्रष्ट संस्कृति का, जो किसी भी मूल्य को नहीं मानती, जिसने पुरानी मान्यताओं को तिरस्कृत कर दिया है, और जो मात्र विज्ञान से प्रभावित होकर भटक रही है, क्या गीता का कर्म-मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता? मूल्यों का पूरी तरह निष्कासन करके हम कदापि शान्ति नहीं खोज पायेंगे।

आज का मानव मानसिक अस्त-व्यस्तता, पारिवारिक बिखराव, तलाक और प्रेम के मूल्यों का तिरस्कार आदि के कारण भटक रहा है । भगवदगीता और बाईबल में समन्वित जीवन, समन्वित दर्शन और समन्वित ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। इन जीवन-सत्य का स्वीकार करके ही मनुष्य आत्म-शान्ति का अनुभव प्राप्त कर सकता है।